

आगम शतक

(आचार्य विद्यानन्द मुनिराज के प्रिय गाथा-श्लोक)

प्रो. वीरसागर जैन

आगम-शतक

(आचार्य विद्यानन्द मुनिराज के प्रिय गाथा-श्लोक)

संकलन-सम्पादन

प्रो. (डॉ.) वीरसागर जैन

अध्यक्ष, जैनदर्शन विभाग

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110016

ई-मेल : veersagarjain@gmail.com

मोबाईल : 9868888607

प्रकाशक

कुन्दकुन्द भारती न्यास

18-बी, स्पेशल इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110067

आगम शतक

आशीर्वाद	: आचार्य विद्यानन्द मुनिराज
प्रस्तावना	: आचार्य श्रुतसागर मुनिराज
संकलन-सम्पादन	: प्रो. (डॉ.) वीरसागर जैन
प्रकाशक	: कुन्दकुन्द भारती न्यास
अर्थ-सौजन्य	: श्रीमती सविता जैन एवं श्री सुमंत कुमार जैन सैक्टर-56, गुरुग्राम, हरियाणा (भारत)
मुद्रक	:
संस्करण	: 22 अप्रैल, 2025 ई., 500 प्रतियाँ आचार्य विद्यानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर
मूल्य	: 20/- रुपये

© सम्पादक के पास सर्वाधिकार सुरक्षित

प्राप्ति-स्थल : कुन्दकुन्द भारती न्यास
18-बी, स्पेशल इंस्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली-110067

AAGAM SHATAK

Holy Blessing	: Acharya Vidyanand Muniraj
Preface	: Acharya Shrutsagar Muniraj
Compilation	: Prof. (Dr.) Veersagar Jain
Publisher	: Kund Kund Bharti Trust, New Delhi
Printer	:
Edition	: 22 nd April, 2025, 500 Copies
Price	: Rs. 20/-

सम्पादकीय

आचार्य विद्यानन्दजी बड़े ही आगम-प्रतिबद्ध विद्वान् थे। वे एक अक्षर भी आगम को छोड़कर बोलना पसन्द नहीं करते थे। वे स्वयं भी सदा आगम के आधार से ही बोलते थे और दूसरों को भी यही उपदेश देते थे कि आगम को छोड़कर कभी भी कुछ मत बोलो। सदा जिनवाणी सुनाओ, मनमानी मत सुनाओ। आजकल बहुत-से लोग अपने मन से कुछ भी लच्छेदार प्रवचन देते हैं, पर उनको ऐसे लोग पसन्द नहीं थे। अपनी सभा में तो वह उनसे कभी नहीं बुलवाते थे। मुझे भी उनका स्पष्ट निर्देश था कि जब भी बोलो, चाहे पाँच मिनट ही बोलो, पहले कोई एक आगम की मूल गाथा या श्लोक सुनाओ और बाद में उसके आधार से कुछ कहो।

आचार्यश्री की यह आगम-प्रतिबद्धता अनुकरणीय है। यदि वर्तमान में सभी वक्ता इसे अपना लें तो कहीं कोई विवाद उत्पन्न न हो, अपितु उत्पन्न हुए विवाद भी सहज सुलझ जाँएँ।

आचार्यश्री की यह आगम-प्रतिबद्धता उनकी बहुत बड़ी दूरदर्शिता भी है, क्योंकि आगम को छोड़कर मनमाने ढंग से बोलने वाले वक्ताओं की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है, मानों सबको नेता बनना है। यह अच्छा लक्षण नहीं है, जैनदर्शन की सुरक्षा के लिए सुखद भविष्य का संकेत नहीं है। मैंने देखा है कि आचार्यश्री अनेक बार इस बात से दुःखी हो जाते थे कि आज कुछ जैन मुनि भी आगम को छोड़कर लोकरंजन हेतु मनमाने प्रवचन देते हैं। उन्होंने अनेक बार अपने प्रवचनों में इस बात की चिंता भी व्यक्त की है। सभी को संदेश भी दिया है कि देखो! जिस प्रकार सीमा पर स्थित सैनिक के हाथ में सदा शस्त्र रहता है, यदि एक सैकेण्ड भी शस्त्र छूट जाए तो समझो वह गया काम से; उसी प्रकार साधु के हाथ में सदा शास्त्र रहना चाहिए, यदि एक सैकेण्ड भी वह शास्त्र छोड़े तो समझो गया काम से। उनका स्पष्ट मानना था कि जो व्यक्ति आगम को छोड़ेगा वह

भटक जाएगा और जो आगम से जुड़ा रहेगा वह कभी नहीं भटकेगा। उन्हें मूलाचार की निम्नलिखित गाथा बहुत अधिक प्रिय थी, जिसमें कहा गया है कि जिसप्रकार सुई यदि डोरा-सहित हो तो कहीं गिरने पर भी खोती नहीं है, उसीप्रकार संसार में रहते हुए भी जो साधु सूत्र अर्थात् आगम से बँधा रहता है वह कभी भटकता नहीं है। यथा—

सूई जहा ससुत्ता, ण णस्सदि दु पमाददोसेण ।
एवं ससुत्त पुरिसो, ण णस्सदि तहा पमाद दोसेण ॥

—आचार्य वट्टकेर, मूलाचार, गाथा 973

इसी भाव की गाथा आचार्य कुन्दकुन्द कृत सूत्रपाहुड में भी चौथे नम्बर पर मिलती है। इन सबसे सूत्र अर्थात् आगम के प्रति सदैव गहराई से प्रतिबद्ध रहने की प्रबल शिक्षा प्राप्त होती है।

आचार्यश्री ऐसे ही आगम-प्रतिबद्ध मुनि थे और उनकी इसी आगम-प्रतिबद्धता को उजागर करने के लिए यहाँ हमने यह ‘आगम-शतक’ तैयार किया है। इसमें कुल 108 गाथा-श्लोकों का संकलन किया है, जिनमें पहले 50 प्राकृत-गाथाएँ हैं और बाद में 58 संस्कृत-श्लोक हैं। संकलित सभी गाथा-श्लोक आचार्यश्री को अत्यंत प्रिय थे। वे इन्हें बार-बार पढ़ते थे, गाते थे, लिखते थे, समझाते थे। उन्हें इनमें बड़ा रस आता था, बहुत गहरा भाव भासित होता था। पाठकों से निवेदन है कि वे भी इन गाथा-श्लोकों की गहराई में गोता लगाने का प्रयास करें, उन्हें बहुत लाभ होगा। आशा है कि इस आगम-शतक से सभी का स्वाध्याय भी होगा और सभी को आगम के आधार से लिखने, बोलने और जीने की शिक्षा भी प्राप्त होगी। यदि ऐसा हुआ तो यह जिनागम की रक्षा-सुरक्षा हेतु एक ठोस कदम सिद्ध होगा।

—वीरसागर जैन

प्रस्तावना

साधु सदा आगमज्ञानरूपी चक्षु से देखते हैं

—आचार्य श्रुतसागर मुनिराज

आगमचक्षु साहू —आचार्य कुन्दकुन्द, प्रवचनसार, 234

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं— साधु को आगम अर्थात् जिनागम अर्थात् जिनेन्द्र सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित श्रुतज्ञान अथवा द्वादशांग वाणी स्वरूप आगम की चक्षु अर्थात् आँखों से देखना चाहिए।

आगे भी वे इसी आध्यात्मिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

आगमहीणो समणो, णेव अप्पाणं परं वियाणादि ।
अविजाणंतो अट्ठे, खवेदि कम्माणि कथ भिक्खु ॥

—प्रवचनसार, 233

अर्थात् आगमहीन श्रमण न तो अपने को जान पाता है और न पर को। स्व-पर को नहीं जानने की इस स्थिति में वह कर्मों का क्षय कैसे करेगा?

सत्य है, हम श्रुतज्ञान से, प्रमाण एवं विविध नयों से ही वस्तु-स्वरूप को स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। षट्खंडागम में आचार्यदेव बतलाते हैं—

णत्थि णएहिं विहूणं, सुत्तं अत्थोव्व जिणवरमदमिह ।
तो णयवादे णिवुणा, मुणिणो सिद्धंतिया होति ॥

—षट्खण्डागम, 1/1/1/68

अर्थात् तीर्थंकर जिनेन्द्र भगवान के मत में सूत्र और अर्थ कुछ भी नयवाद के बिना नहीं कहा गया है, इसलिए जो मुनि नयवाद में निपुण हैं, वे ही सिद्धांत के सच्चे ज्ञाता समझना चाहिए।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं कि इस पंचम काल में मन को एकाग्र करने के लिए आगम के सहारे की अत्यन्त आवश्यकता है, मन की एकाग्रता का आधार सूत्र का अध्ययन ही है। यथा—

अञ्जयणमेव ज्ञाणं —आचार्य कुन्दकुन्द, रयणसार, 30

अर्थात् आगम का अध्ययन ही ध्यान है। स्थूल रूप से आगम-शास्त्रों के अध्ययन में मन को एकाग्र करना ही ध्यान है और विशेष रूप से पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ एवं रूपातीत स्वरूप धर्मध्यान करना भी आगम का ध्यान ही है।

तिलोपपण्णत्ति ग्रन्थ में आगम शास्त्र को ही श्रुतदेवता अर्थात् सरस्वती माता कहा है एवं उसकी जय-जयकार की है, वह इसप्रकार है—

जयदु सुद-देवदा

श्रुतदेवता अर्थात् जिनवाणी माता, सरस्वती माता की जय हो।

इस आगम-ग्रन्थ में आचार्य विद्यानन्द मुनिराज की प्रिय गाथाओं एवं श्लोकों को 'आगम-शतक' के रूप में संकलित एवं संपादन किया गया है। धर्मानुरागी डॉ. वीरसागर जैन ने बहुत ही सुन्दर रूप से इस लघुकाय ग्रन्थ को तैयार किया है। आचार्यश्री इसी प्रकार और भी अन्य अनेक ग्रन्थों का आलोड़न करके सर्वाधिक श्लोकों एवं गाथाओं का उपयोग करते थे। हम सब इसी प्रकार आचार्यश्री के आगम-ज्ञान को आगे भी जनमानस तक पहुँचाते रहें— ऐसी मेरी मंगल भावना है।

आगम-शतक

1

आगमहीणो समणो, जेव अप्पाणं परं वियाणादि ।
अविजाणंतो अट्ठे, खवेदि कम्माणि कध भिक्खु ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, प्रवचनसार, गाथा 233

अर्थ— आगमहीन श्रमण न तो स्व को जान पाता है, न ही पर को, और स्व-पर रूप अर्थों को जाने बिना कोई भिक्षु कैसे कर्मों का क्षय कर सकता है?

2

एयत्त-णिच्छयगदो, समओ सव्वत्थ सुंदरो लोणे ।
बंधकहा एयत्ते, तेण विसंवादिणी होदि ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा 3

अर्थ— एकत्व-निश्चय को प्राप्त निश्चय से अपने स्वभाव में स्थित शुद्ध आत्मा ही लोक में सर्वत्र सुंदर है— शोभा को प्राप्त होता है, इसलिए एकत्व में दूसरे के साथ बन्ध की कथा विसंवाद करनेवाली है।

3

अलियं कमले कमला, पय-कमले तुह जिणिंद सा वसदि ।
णहकिरणणिहेण घडेंति, णदजणे सा कडक्खछडा ॥

—आचार्य पद्मनन्दी, ऋषभस्तोत्र, गाथा 46

अर्थ— हे जिनेन्द्र! लक्ष्मी कमल में रहती है— यह असत्य है। लक्ष्मी तो वास्तव में आपके चरण-कमल में रहती है। यही कारण है कि जो जीव आपके चरण-कमल में झुकते हैं, उन पर ही यह लक्ष्मी कृपा-कटाक्ष बरसाती है।

4

णियभावणाणिमित्तं, मए कदं णियमसारणामसुदं ।
णच्चा जिणोवदेसं, पुव्वावरदोसणिम्मक्कं ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, नियमसार, गाथा 187

अर्थ— पूर्वापर-दोष-रहित जिनोपदेश को जानकर मैंने निज भावना के निमित्त से यह नियमसार नामक शास्त्र बनाया है ।

5

जम्मणअभिणिक्खवणे, णाणुप्पत्ती य तित्थचिण्हणिसिहीओ ।
पासंतस्स जिणाणं, सुविसुद्धं दंसणं होदि ॥

—आचार्य शिवकोटि, भगवती आराधना, गाथा 145

अर्थ— जिनदेवों के जन्मस्थान, दीक्षास्थान, केवलज्ञानोत्पत्ति-स्थान, समवशरण के चिह्न, मानस्तम्भ का स्थान और निषीधिका-स्थान देखने वाले के सम्यक् रूप से निर्मल सम्यग्दर्शन होता है ।

6

णत्थि णएहि विहूणं, सुत्तं अत्थोव्व जिणवरमदम्हि ।
तो णयवादे णिवुणा, मुणिणो सिद्धंतिया होंति ॥

—षट्खंडागम 1/1/1/68

अर्थ— तीर्थंकर जिनेन्द्र भगवान के मत में सूत्र और अर्थ कुछ भी नयवाद के बिना नहीं कहा गया है । इसलिए जो मुनि नयवाद में निपुण होते हैं वे ही सच्चे सिद्धान्त के ज्ञाता समझने चाहिए ।

7

जिणपूया मुणिदाणं, करेदि जो देदि सत्तिरुवेण ।
सम्मादिट्ठी सावय, धम्मी सो होदि मोक्ख-मग्ग-रदो ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, रयणसार, गाथा 13

अर्थ— जो जिनदेव की पूजा करता है और शक्ति के अनुसार मुनियों को दान देता है, वह सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा श्रावक है, मोक्षमार्ग में रत है ।

8

णाणा जीवा णाणा, कम्मं णाणाविहं हवे लद्धी ।
तम्हा वयण-विवादं, सग-पर-समएहिं वज्जेज्जो ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, नियमसार, गाथा 156

अर्थ— जीव नाना प्रकार के हैं, कर्म नाना प्रकार के हैं और उनकी लब्धियाँ भी नाना प्रकार की हैं, इसलिये साधर्मी हो या परधर्मी— किसी के भी साथ वचन-विवाद नहीं करना चाहिये ।

9

णाणी सिव परमेट्ठी, सव्वण्हू विण्हु चहुमुहो बुद्धो ।
अप्पो वि य परमप्पो, कम्मविमुक्को य होदि फुडं ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, भावपाहुड, गाथा 149

अर्थ— सम्यग्दर्शन के प्रभाव से यह संसारी जीव भी ज्ञानी, शिव, परमेष्ठी, सर्वज्ञ, विष्णु, चतुर्मुख, बुद्ध और परमात्मा हो जाता है तथा निश्चय ही सर्वकर्मों से मुक्त भी हो जाता है ।

10

धम्मसभा णिप पंच य जादि लोगा य बंधुवग्गाणि ।
इण विरुधं वच करदि स च सठ लोगणिंद दुक्खलहो ॥

—पं. टेकचन्द, सुदृष्टितरंगिणी, गाथा 100

अर्थ— जो व्यक्ति, धर्म, सभा, नृप, पंच, जाति, लोक और बन्धु वर्ग के विरुद्ध वचन बोलता है, वह शठ है, लोकनिन्द्य है और दुःख प्राप्त करनेवाला है ।

11

वरिस सहस्सेण पुरा जं, कम्मं हणदि तेण कालेण ।
ते संपदि वरिसेण हु, णिज्जरयदि हीणसंहणणेण ॥

—आचार्य देवसेन, भावसंग्रह, गाथा 131

अर्थ— पहले जो कर्म हजार वर्ष में नष्ट किये जाते थे, वे आज हीन संहनन में एक ही वर्ष में नष्ट कर लिये जाते हैं ।

12

धम्मो मंगलमुक्किद्वं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

—जयधवल एवं प्रतिक्रमण सूत्र, पृष्ठ 260

अर्थ— धर्म परम मंगल और उत्कृष्ट है। कौन-सा धर्म? अहिंसा धर्म, संयम धर्म व तपरूप धर्म। जिस भव्यात्मा का मन उक्त धर्म में सदा तल्लीन रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

13

पढमचउक्के पढमं, पंचमए जाण पोण्णलं तच्चं ।
छट्ठे-सत्तम आसव, अट्ठमए बंध णादव्वो ॥
णवमे संवर-णिज्जर, दहमे मोक्खं वियाणाहि ।
इह सत्ततच्च भणिदं, जिणवरपणीदं दहसुत्तं ॥

—तत्त्वार्थसूत्र-प्रशस्ति

अर्थ— तत्त्वार्थसूत्र में शुरु के चार अध्यायों में जीवतत्त्व का वर्णन है, पाँचवें अध्याय में अजीवतत्त्व का वर्णन है, छठे-सातवें अध्यायों में आस्रवतत्त्व का वर्णन है, आठवें अध्याय में बंधतत्त्व का वर्णन है, नौवें अध्याय में संवर-निर्जरा तत्त्व का वर्णन है और दसवें अध्याय में मोक्षतत्त्व का वर्णन है। इसप्रकार तत्त्वार्थसूत्र में दस अध्यायों में जिनेन्द्र भगवान ने सात प्रयोजनभूत तत्त्व कहे हैं।

14

सुद-परिचिदाणुभूदा, सव्वस्स वि काम-भोग-बंधकहा ।
एयत्तस्सुवलंभो, णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा 4

अर्थ— काम (स्पर्शन एवं रसना इन्द्रिय) और भोग (घ्राण, चक्षु एवं श्रोत्र इन्द्रिय) —इन पाँचों इन्द्रियों के सम्बन्ध की और बन्ध की कथा तो सभी जीवों की सुनी हुई है, परिचित है और अनुभव में आई हुई है; केवल रागादि से भिन्न एकत्व की प्राप्ति सुलभ नहीं है।

15

णत्थि अणूदो अप्पं, आयासादो अणूणयं णत्थि ।
जह जह जाण महल्लं, ण वयमहिंसासमं अत्थि ॥

—भगवती आराधना, गाथा 783

अर्थ— जिस प्रकार अणु से सूक्ष्म कोई अन्य द्रव्य नहीं है और आकाश से बड़ा दूसरा कोई द्रव्य नहीं है, उसी प्रकार अहिंसा से सूक्ष्म और महान् कोई अन्य व्रत नहीं है ।

16

लद्धूण णिहिं ऐक्को, तस्स फलं अणुहवेदि सुजणत्ते ।
तह णाणी णाणणिहिं, भुंजेदि चइत्तु परतत्तिं ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, नियमसार, गाथा 157

अर्थ— जैसे कोई व्यक्ति निधि को प्राप्त करके उस निधि का फल अपने एकान्त में अनुभव करता है— भोगता है, उसी प्रकार ज्ञानी पर की चिन्ता छोड़कर अपनी ज्ञाननिधि को भोगता है ।

17

खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केणवि ॥

—मूलाचार, गाथा 2/43

अर्थ— मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ, सभी जीव मुझे क्षमा करें । मेरा सभी जीवों से मैत्री भाव है, किसी से भी कोई वैरभाव नहीं है ।

18

जं सक्कदि तं किज्जदि, जं च ण सक्कदि तहेव सद्दहणं ।
सद्दहमाणो जीवो, पावदि अजरामरं ठाणं ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, दंसणपाहुड, गाथा 22

अर्थ— जो तुमसे शक्य हो वह करो, पर जो तुमसे शक्य नहीं हो उसकी भी श्रद्धा करो । श्रद्धा करनेवाला जीव अजर-अमर पद को प्राप्त करता है ।

19

बाहिरगंथ-विहीणा, दलिद्वमणुवा सहावदो हुंति ।
अब्भंतरगंथं पुण, ण सक्कदे को वि छडेदुं ॥

—कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा 387

अर्थ— बाह्य परिग्रह से रहित तो दरिद्र मनुष्य स्वभाव से होते ही हैं परंतु अंतरंग परिग्रह को छोड़ना सबके लिए संभव नहीं है ।

20

चिंता बद्धउ सयलु जग, चिंता किणहु ण बद्ध ।
जे णर चिंता वस करहि, ते माणस णहि सिद्ध ॥

—कल्लोल कवि, ढोला मारु रा दूहा, 220

अर्थ— चिंता ने सारे जगत को बाँध रखा है, परन्तु किसी भी व्यक्ति ने चिंता को नहीं बाँधा । जो मनुष्य चिंता को वश में कर लेता है, वह तो मनुष्य नहीं, सिद्ध है ।

21

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्धिद्वं ।
देविंदविंदवदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥

—आचार्य नेमिचन्द्र, वृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा 1

अर्थ— जिन्होंने हमको जीव-अजीव द्रव्यों का उपदेश दिया है, उन देवेन्द्र-समूह द्वारा वंदित वृषभदेव को मैं सदा सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ।

22

जो जाणदि अरिहंतं, दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, प्रवचनसार, गाथा 80

अर्थ— जो जीव अरिहंत को द्रव्य-गुण-पर्याय से जानता है वह अपनी आत्मा को जान लेता है और उसका मोह क्षय हो जाता है ।

23

अण्णोणं पविसंता, दिंता ओगासमण्णमण्णस्स ।
मेलंता वि य णिच्चं, सगसब्भावं ण विजहंति ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, पंचास्तिकाय, गाथा 7

अर्थ— सभी द्रव्य परस्पर एक-दूसरे में प्रवेश करते हैं, एक-दूसरे को जगह देते हैं, एक-दूसरे में मिलते भी हैं, परन्तु कभी भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं ।

24

परमाणुमित्तयं पि हु, रागादीणं तु विज्जदे जस्स ।
ण वि जाणदि सो अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा 201

अर्थ— जिसके हृदय में (श्रद्धा में) में परमाणु मात्र भी रागादि है वह सर्वागम का धारी हो तो भी आत्मा को नहीं जानता ।

25

सम्मादिट्ठी जीवा, णिसंका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का, जम्हा तम्हा दु णिस्संका ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा 228

अर्थ— सम्यग्दृष्टि जीव निःशंक होते हैं इसलिए निर्भय भी होते हैं, क्योंकि वे सप्तभय से रहित होते हैं ।

26

एदम्हि रदो णिच्चं, संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि ।
एदेण होहि तित्तो, होहिदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा 206

अर्थ— एक इस ज्ञान में ही सदा रत रहो, इसी में सदा सन्तुष्ट रहो, इसी में सदा तृप्त रहो, तुम्हें उत्तम सुख प्राप्त होगा ।

27

आदहिदं कादव्वं, जदि सक्कदि परहिदं पि कादव्वं ।
आदहिद-परहिदादो, आदहिदं सुट्ठु कादव्वं ॥

—भगवती आराधना, टीका 154

अर्थ— हमें आत्महित करना चाहिए, यदि सम्भव हो तो परहित भी करना चाहिए, किन्तु आत्महित और परहित में से आत्महित को ही अच्छी तरह से करना चाहिए ।

28

धम्मो वत्थु सहावो, खमादिभावो य दसविहो धम्मो ।
रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥

—कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा 478

अर्थ— वस्तु का स्वभाव धर्म है। दस प्रकार का क्षमादि भाव धर्म है। रत्नत्रय धर्म है। जीवों की रक्षा करना धर्म है।

29

जेण विणा लोगस्स वि, ववहारो सव्वहा ण णिव्वड्ढ ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो, णमो अणेगंतवायस्स ॥

—आचार्य सिद्धसेन, सन्मत्तिसूत्र, गाथा 3/69

अर्थ— जिसके बिना लोकव्यवहार भी बिल्कुल नहीं चल सकता, उस तीन लोक के अद्वितीय गुरु अनेकान्तवाद को मैं नमस्कार करता हूँ।

30

जे णयदिट्ठविहीणा, ताण ण वत्थूसहावउवलद्धि ।
वत्थुसहावविहूणा, सम्मादिट्ठी कंहं हुंति ॥

—माइल्लधवल, नयचक्र, गाथा 181

अर्थ— जो व्यक्ति नयदृष्टि-विहीन हैं, उन्हें वस्तुस्वरूप का सही ज्ञान नहीं हो सकता और वस्तुस्वरूप को नहीं जानने वाले जीव सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकते हैं?

31

जदि इच्छह उत्तरिदुं, अण्णाणमहोदहिं सुलीलाए ।
ता णादुं कुणह मइं, णयचक्के दुणयतिमिरमत्तंडे ॥

—माइल्लधवल, नयचक्र, गाथा 419

अर्थ— यदि अज्ञान-सागर को लीलामात्र में पार करना चाहते हो तो नयचक्र में बुद्धि लगाओ, यही दुर्नय-तिमिर को नष्ट करने के लिए सूर्य है ।

32

ईसाभावेण पुणो, केई णिंदंति सुंदरं मण्णं ।
तेसिं वयणं सोच्चाऽभत्ति मा कुणह जिणमण्णे ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, नियमसार, गाथा 186

अर्थ— कई पुरुष ईर्ष्याभाव से इस सुन्दर जिनमार्ग की निन्दा करते हैं । उनके वचन सुनकर जिनमार्ग के प्रति अभक्ति मत करो ।

33

जइ जिणमयं पवज्जह, तो मा ववहारणिच्छए मुयह ।
एक्केण विणा छिज्जइ, तित्थं अण्णेण पुण तच्चं ॥

—आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार-टीका, गाथा 11

अर्थ— यदि जिनमत का प्रवर्तन करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय— इन दोनों ही नयों को मत छोड़ो, क्योंकि एक के बिना तीर्थ का नाश हो जाएगा और दूसरे के बिना तत्त्व का ।

34

जह ते ण पियं दुक्खं, तहेव तेसिं पि जाण जीवाणं ।
एवं णच्चा अप्पोवमिवो, जीवेसु होदि सदा ॥

—भगवती आराधना, गाथा 776

अर्थ— जिस प्रकार तुझे दुःख प्रिय नहीं है, उसी प्रकार उन जीवों को भी दुःख प्रिय नहीं है । ऐसा जानकर अपनी ही तरह सदा सब जीवों के प्रति व्यवहार करो अर्थात् किसी को दुःख मत दो ।

35

सव्वे भावे जम्हा, पच्चक्खाई परेत्ति णादूण ।
 तम्हा पच्चक्खाणं, णाणं णियमा मुणेदव्वं ॥
 जह णाम कोवि पुरिसो, परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि ।
 तह सव्वे परभावे, णाऊण विमुंचदे णाणी ॥

—समयसार, गाथा 34-35

अर्थ— यह आत्मा सभी परभावों को ‘ये पर हैं’— ऐसा जानकर त्याग करता है, अतः वास्तव में ज्ञान ही प्रत्याख्यान है— ऐसा नियम से जानना चाहिए । जैसे लोक में कोई पुरुष परवस्तु को ‘यह परवस्तु है’ —ऐसा जानकर परवस्तु का त्याग करता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष समस्त परद्रव्यों के भावों को ‘ये परभाव हैं’, ऐसा जानकर उनको छोड़ देता है ।

36

भत्तपइण्णाइविही, जहण्णमंतोमुहुत्तयं होदि ।
 वारसवरिसा जेद्दा, तम्मज्जे होदि मज्झिमया ॥

—आचार्य नेमिचन्द्र, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गाथा 60

अर्थ— भक्तप्रतिज्ञा अर्थात् भोजन-त्याग की प्रतिज्ञा करके जो सल्लेखना, संथारा, समाधिमरण होता है, उसके काल का प्रमाण जघन्य से अन्तर्मुहूर्त अर्थात् मृत्यु से 48 मिनट पहले एवं उत्कृष्ट 12 वर्ष प्रमाण है तथा अन्तर्मुहूर्त से एक-एक समय बढ़ते हुए 12 वर्ष पर्यन्त जितने भेद हैं वे सब मध्यमकाल के भेद जानना ।

37

जध इंधणेहिं अज्जी, लवणसमुद्रो णदीसहस्सेहिं ।
 तह जीवस्स ण तित्ती, अत्थि तिलोगे वि लद्धम्मि ॥

—भगवती आराधना, गाथा 1137

अर्थ— जैसे ईंधन से आग की तृप्ति नहीं होती और हजारों नदियों के मिलने से लवणसमुद्र की तृप्ति नहीं होती, वैसे ही तीनों लोक की संपदा मिल जाने पर भी जीव की परिग्रह से तृप्ति नहीं होती है ।

38

जीववहो अप्पवहो, जीवदया होइ अप्पणो हु दया ।
विसकंटओव्व हिंसा, परिहरियव्वा तदो होदि ॥

—भगवती आराधना, गाथा 793

अर्थ— जीवों का घात अपना ही घात है और जीवों पर की गई दया अपने पर ही की गई दया है। जिस प्रकार जो एक बार एक जीव का घात करता है वह स्वयं अनेक जन्मों में मारा जाता है, उसी प्रकार जो एक जीव पर दया करता है वह स्वयं अनेक जन्मों में दूसरे जीवों के द्वारा रक्षा किया जाता है। इसलिए दुःख से डरने वाले मनुष्य को विषैले काँटे की तरह हिंसा से बचना चाहिए।

39

कथं चरे कथं चिट्ठे, कथमासे कथं सये ।
कथं भासेज्ज भुंजेज्ज, जेण पावं ण बंधई ॥
जधं चरे जधं चिट्ठे, जधमासे जधं सये ।
जधं भासेज्ज भुंजेज्ज, जेण पावं ण बंधई ॥

—मूलाचार, 10/21-22

अर्थ— प्रश्न है कि कैसे चलें, कैसे उठें, कैसे बैठें, कैसे सोएँ, कैसे खाएँ, कैसे बोलें, जिससे कि पापबन्ध न हो। उत्तर— यत्नपूर्वक चलें, यत्नपूर्वक उठें, यत्नपूर्वक बैठें, यत्नपूर्वक सोएँ, यत्नपूर्वक खाएँ, यत्नपूर्वक बोलें, जिससे कि पापबन्ध न हो।

40

पौण्णलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो ।
चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥

—आचार्य नेमिचन्द्र, द्रव्यसंग्रह, गाथा 8

अर्थ— यह जीव व्यवहारनय से पुद्गल कर्मों का कर्त्ता है, निश्चयनय से अपने चेतन कर्मों का कर्त्ता है और शुद्धनय से अपने शुद्धभावों का ही कर्त्ता है। (इस गाथा का अर्थ समझने पर ही हम समयसार आदि सर्व शास्त्रों के कर्त्ता-कर्म संबंधी सर्व व्याख्यानों को भलीभाँति समझ सकते हैं।)

41

जह णाम को वि पुरिसो, रायाणं जाणिऊण सद्दहदि ।
तो तं अणुचरदि पुणो, अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥
एवं हि जीवराया, णदव्वो तह य सद्दहेदव्वो ।
अणुचरिदव्वो य पुणो, सो चेव दु मोक्खकामेण ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा 17-18

अर्थ— जिस प्रकार कोई धन का अर्थी पुरुष राजा को जानकर श्रद्धा करता है और फिर उसका प्रयत्नपूर्वक अनुचरण करता है अर्थात् सुन्दर रीति से सेवा करता है, उसी प्रकार मोक्ष के इच्छुक को जीवरूपी राजा को जानना चाहिए और फिर उसी प्रकार उसका श्रद्धान करना चाहिए और तत्पश्चात् उसी का अनुचरण करना चाहिए अर्थात् अनुभव के द्वारा तन्मय हो जाना चाहिए ।

42

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो ।
एसो जिणोवदेसो, तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा 150

अर्थ— रागी जीव कर्मों को बाँधता है और विरागी जीव कर्मों से छूटता है— यह जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश है, इसलिए हे भव्य जीव ! तू कर्मों में राग मत कर!

43

बावत्तरी-कला-कुसला, पंडिय-पुरिसा अपंडिया चेव ।
सव्व-कलाण वि पवरा, धम्मकलां जे ण जाणंति ॥

—आचार्यश्री की डायरी से

अर्थ— यदि कोई व्यक्ति समस्त बहत्तर कलाओं में कुशल है, किन्तु धर्म-कला नहीं जानता है, उसमें अकुशल है, तो वह पंडित होकर भी अपंडित ही है। लौकिक सर्व कलाओं में कुशलता प्राप्त कर लेने पर भी यदि धर्मकला नहीं सीखी तो वह व्यक्ति वास्तव में अज्ञानी ही है, क्योंकि मोक्षमार्ग में उनकी कोई कीमत नहीं है। संसार-सागर पार करने के लिए तो धर्मकला, अध्यात्मकला ही उपयोगी है।

44

णयरम्मि वण्णदे जह, ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि ।
देहगुणे थुव्वंते, ण केवलिगुणा थुदा होति ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा 30

अर्थ— जिस प्रकार नगर का वर्णन करने पर राजा का वर्णन नहीं किया जाता है, उसी प्रकार शरीर के गुण का स्तवन करने पर तीर्थंकर या केवली के गुणों का स्तवन नहीं होता है।

45

णगरस्स जह दुवारं, मुहस्स चक्खू तरुस्स जह मूलं ।
तह जाण सुसम्मत्तं, णाणचरणवीरियतवाणं ॥

—भगवती आराधना, गाथा 735

अर्थ— जैसे नगर में प्रवेश करने का उपाय उसका द्वार होता है, वैसे ही ज्ञान, चारित्र, वीर्य और तप का द्वार सम्यक्त्व है। यदि जीव सम्यक्त्व रूप से परिणत होता है तो वह ज्ञानादि में प्रवेश कर सकता है। सम्यक्त्व के बिना ज्ञानादि में प्रवेश संभव नहीं है। सम्यक्त्व के बिना जीव सातिशय अवधिज्ञान आदि, यथाख्यात चारित्र अथवा बहुत निर्जरा में निमित्त तप को प्राप्त नहीं कर सकता। तथा जैसे नेत्र मुख को शोभा प्रदान करते हैं, वैसे ही सम्यक्त्व से ज्ञानादि शोभित होते हैं। तथा जैसे जड़ वृक्ष की स्थिति में कारण है, वैसे ही सम्यक्त्व ज्ञानादि की स्थिति में निमित्त है।

46

जह ण वि सक्कमणज्जो, अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं ।
तह ववहारेण विणा, परमत्थुवदेसणमसक्कं ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा 8

अर्थ— जैसे अनार्य (अनाड़ी) को अनार्य (अनाड़ी) भाषा के बिना अर्थ ग्रहण कराना, अपना आशय समझाना शक्य नहीं है, उसीप्रकार व्यवहार नय के बिना परमार्थ का उपदेश करना अशक्य है।

47

जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेयेसु रज्जदि ।
जेण मेत्ती पभावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे ॥

—मूलाचार, 5/268

अर्थ— जो राग से विरक्त करे, श्रेष्ठ कर्म अर्थात् मुक्तिमार्ग में लगाये और मैत्री भाव उत्पन्न करे उसे ही जिनशासन में सच्चा ज्ञान कहा है। लोक में ऐसा ज्ञान तो बहुत मिल रहा है जो विषयों में आसक्त करे, पाप कार्यों में लगाये और परस्पर द्वेष भाव उत्पन्न करे, परन्तु वह सच्चा ज्ञान नहीं है।

48

अहमेक्को खलु सुद्धो, दंसण-णाणमइओ सदारुवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि, अण्णं परमाणुमेत्तं पि ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा 38

अर्थ— ज्ञानी आत्मा यह जानता है कि मैं एक हूँ, निश्चय ही शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञानमय हूँ, रूप, रस, गंध, स्पर्श के अभाव के कारण सदा अरूपी हूँ, कोई भी अन्य परद्रव्य परमाणु-मात्र भी मेरा नहीं है।

49

अरुहा सिद्धाइरिया, उवझाया साहू पंच परमेद्वी ।
सव्वे चिट्ठदि आदा, तम्हा आदा हु मे सरणं ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, मोक्षपाहुड, गाथा 104

अर्थ— अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु —ये सब एक आत्मा की ही अवस्थाएँ हैं, अतः मैं तो एक आत्मा की ही शरण ग्रहण करता हूँ। पं. टोडरमलजी ने भी मोक्षमार्ग प्रकाशक में ऐसा ही कहा है—

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग—विज्ञान ।
नमों ताहि जातें भये, अरिहंतादि महान ॥

50

विज्जारहमारुढो, मणोरहपहेसु भमदि जो चेदा ।
सो जिणणाणपहावी, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा 236

अर्थ— जो आत्मा विद्या अर्थात् ज्ञान रूपी रथ में आरुढ़ हुआ मनोरथ-मार्ग में भ्रमण करता है, उसे जिनेन्द्रदेव के ज्ञान की प्रभावना करनेवाला सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये ।

51

विद्वानेव विजानाति, विद्वज्जनपरिश्रमम् ।
न हि वन्ध्या विजानाति, गुर्वी प्रसववेदनाम् ॥

—नीतिसार

अर्थ— विद्वान् ही विद्वान् का परिश्रम जानता है । वन्ध्या स्त्री प्रसव के समय होने वाली बड़ी भयंकर वेदना को नहीं जानती ।

52

अहिंसैव जगन्माताऽहिंसैवानन्दपद्धतिः ।
अहिंसैव गतिः साध्वी श्रीरहिंसैव शाश्वती ॥

—आचार्य शुभचन्द्र, ज्ञानार्णव, 8/32

अर्थ— अहिंसा ही जगत की माता है, अहिंसा ही आनन्द-पद्धति है, अहिंसा ही श्रेष्ठ गति है और अहिंसा ही शाश्वतिक लक्ष्मी है ।

53

अल्पाक्षरमसंदिग्धं, सारवद् गूढनिर्णयं ।
निर्दोषं हेतुमत् तथ्यं, सूत्रमित्युच्यते बुधैः ॥

—पंचसंग्रह, 4/3, पृष्ठ 585

अर्थ— गणधरों ने सूत्र उसे कहा है, जो अल्पाक्षर (कम अक्षर वाला) हो, असंदिग्ध (संदेह-रहित) हो, सारवद् अर्थात् सारगर्भित हो, गूढनिर्णय (गंभीर बात को बताने वाला) हो, निर्दोष (32 दोषों से रहित) हो, हेतुमत् हो अर्थात् कारणस्वरूप हो और तथ्यपूर्ण हो ।

54

अपाकुर्वन्ति यद्वाचः, कायवाक्चित्तसम्भवम् ।
कलंकमंगिनां सोऽयं, देवनन्दी नमस्यते ॥

—आचार्य शुभचन्द्र, ज्ञानार्णव , 1/15

अर्थ— जिनकी शास्त्र-पद्धति प्राणियों के शरीर, वचन और चित्त— सभी के मल को दूर करने में समर्थ है, उन देवनन्दि आचार्य को मैं प्रणाम करता हूँ। आचार्य देवनन्दि पूज्यपाद स्वामी ने मनशुद्धि के लिए समाधितन्त्र एवं इष्टोपदेश, वचनशुद्धि के लिए जैनेन्द्र व्याकरण एवं कायशुद्धि के लिए आयुर्वेद-ग्रन्थों की रचना की है।

55

कोषस्येव महीपानां, कोशस्य विदुषामपि ।
उपयोगो महान् यस्मात्, क्लेशस्तेन विना भवेत् ॥

—आचार्यश्री की डायरी से

अर्थ— जिसप्रकार राजाओं को ‘कोष’ (धन का भण्डार) की बड़ी भारी आवश्यकता होती है और उसके अभाव में उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है, उसी प्रकार विद्वानों को भी ‘कोश’ (शब्दों का भण्डार, ज्ञान का भण्डार) की महती उपयोगिता होती है और उसके अभाव में उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। सच है, ‘कोश’ के बिना कोई भी अच्छा वक्ता या लेखक नहीं हो सकता। जिसके पास बाल हो, वही स्त्री सुन्दर जूड़ा बना सकती है।

56

आलस्यो मंदबुद्धिश्च, सुखिनो व्याधिपीडितः।
निद्रालुः कामुकश्चेति, षडैते शास्त्रवर्जिताः॥

—सम्यक्त्वकौमुदी

अर्थ— निम्नलिखित 6 प्रकार के लोग शास्त्र-वर्जित हैं अर्थात् शास्त्रज्ञान के अयोग्य हैं, गहरा शास्त्रज्ञान नहीं कर सकते हैं— आलसी, मन्दबुद्धि, सुखिया स्वभावी, व्याधिपीडित, निद्रालु और कामुक।

:: 22 ::

57

कालः कलिर्वा कलुषाशयो वा श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनाशयो वा ।
त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मीप्रभुत्वशक्तेरपवादहेतुः ॥

—आचार्य समन्तभद्र, युक्त्यनुशासन, 5

अर्थ— हे जिनेन्द्र! आपके एकच्छत्र शासन के अपवाद का कारण एक तो कलियुग है, दूसरा श्रोताओं का कलुषाशय है और तीसरा वक्ताओं का वचनाशय है।

58

सर्वातवदत्तद्विगुणमुख्यकल्पं,
सर्वातशून्यं च मिथोऽनपेक्षं ।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं,
सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥

—आचार्य समन्तभद्र, युक्त्यनुशासन, 61

अर्थ— हे महावीर जिन! आपका तीर्थ ही सर्वोदय तीर्थ है, क्योंकि वह सापेक्षतावाद का प्रतिपादन करता है। उसके अनुसार प्रत्येक वस्तु परस्पर विरोधी अनन्त धर्मों को धारण करती है, जो मुख्य-गौण विवक्षा से सिद्ध हो जाते हैं, किन्तु यदि उन्हें निरपेक्ष भाव से देखा जाए तो सब शून्य सिद्ध होता है। आपका तीर्थ इसीलिए सर्व आपदाओं का अंत करनेवाला है।

59

एकेनाकर्षन्ती, श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण ।
अन्तेन जयति जैनी, नीतिर्मन्याननेत्रमिव गोपी ॥

—आचार्य अमृतचन्द्र, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, 225

अर्थ— जिस तरह दही को मथकर मक्खन निकालने वाली ग्वालिन मथानी की रस्सी को एक हाथ से खींचती है और दूसरे हाथ की रस्सी को ढीला कर देती है, उसी तरह जैन दर्शन में पदार्थ-निर्णय-पद्धति (अनेकान्तवाद) पदार्थ के किसी एक धर्म को मुख्य करती है तो दूसरे को गौण (अमुख्य) कर देती है। उसे सर्वथा छोड़ नहीं देती।

60

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः।
 काले काले च वृष्टिं वितरतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ॥
 दुर्भिक्षं चौरमारिः क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके ।
 जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रसरतु सततं सर्वसौख्य-प्रदायि ॥

—आचार्य पूज्यपाद, शांतिपाठ

अर्थ— सम्पूर्ण प्रजाओं का कल्याण हो, शक्तिशाली धर्मात्मा भूमिपाल (शासन, राज्य में) प्रभावशील रहें। समय-समय पर इन्द्र (मेघ) भली प्रकार वर्षा करें, व्याधियों का नाश हो। दुष्काल, चोर और महामारी जगत् को कष्ट देने के लिए क्षण-भर भी न हों और सबको सुख प्रदान करनेवाला तीर्थंकर वृषभादि का जिनशासन और 'धर्मचक्र' विश्व में निरन्तर प्रभावशील रहे।

61

चिंता चिता समा प्रोक्ता, बिन्दुमात्रविशेषतः।
 सजीवे दहति चिन्ता, निर्जीवे दहति चिता ॥

—नीतिवाक्य

अर्थ— चिंता चिता के समान कही गई है। इतना ही नहीं, उसमें एक बिन्दु अधिक है। उसका तात्पर्य यह है कि चिता तो निर्जीव मुर्दे को जलाती है, परंतु चिंता जीवित को ही जला देती है।

62

इतो न किञ्चित् ततो न किञ्चित्,
 यतो यतो यामि ततो न किञ्चित् ।
 विचार्य पश्यन्न कुतोऽपि किञ्चित्,
 स्वात्मावबोधादधिकं न किञ्चित् ॥

—(अमृताशीति-टीका में उद्धृत)

अर्थ— यहाँ भी कुछ नहीं है, वहाँ भी कुछ नहीं है, कहीं भी चले जाओ, कहीं कुछ नहीं है। खूब विचार कर देख लिया कि एक आत्मज्ञान से बढ़कर कहीं कुछ नहीं है।

63

उच्चावचजनप्रायः, समयोऽयं जिनेशिनाम् ।

नैकस्मिन् पुरुषे तिष्ठेदेकस्तम्भ इवालयः॥

—सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचम्पू, 8/365

अर्थ— जिनेन्द्र देव का शासन छोटे-बड़े हीन-अधिक सब तरह के श्रावक, श्राविका, श्रमण और श्रमणा चतुःसंघ समाजों से संगृहीत समझना चाहिये। कोई यह न समझे कि एक ही खंभे पर खड़ा है। क्या कभी एक ईंट पर इमारत खड़ी रह सकती है?

64

कवीनां तीर्थकृद्देवः, किं तरां तत्र वर्ण्यते ।

विदुषां वाङ्मलध्वंसि, तीर्थ यस्य वचोमयम् ॥

—आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, 1/52

अर्थ— जो कवियों में तीर्थकर के समान थे अथवा जिन्होंने कवियों का पथ-प्रदर्शन करने के लिए लक्षणग्रन्थ की रचना की थी और जिनका वचनरूपी तीर्थ विद्वानों के शब्द-सम्बन्धी दोषों को भी नष्ट करने-वाला है, ऐसे उन पूज्यपाद देवनन्दि आचार्य का कौन वर्णन कर सकता है?

65

संकल्प्यं कल्पवृक्षस्य, चिन्त्यं चिन्तामणेरपि ।

असंकल्प्यमसंचिन्त्यं, फलं धर्मादवाप्यते ॥

—आचार्य गुणभद्र, आत्मानुशासन, 22

अर्थ— कल्पवृक्ष का फल प्रार्थना करने पर प्राप्त होता है और चिन्तामणि का फल कामना करने पर प्राप्त होता है, परन्तु धर्म का फल बिना प्रार्थना और बिना कामना के ही प्राप्त हो जाता है।

विशेष— इसका हिन्दी-अनुवाद महाकवि भूधरदासजी ने भी ‘पार्श्वपुराण’ की बारह भावना में इसप्रकार किया है—

जाँचे सुरतरु देय सुख, चिन्तत चिन्तारैन ।

बिन जाँचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन ॥

66

दृश्यन्ते भुवि किं न ते कृतधियः संख्याव्यतीताश्चिरं ।
 ये लीलां परमेष्ठिनः प्रतिदिनं तन्वन्ति वाग्भिः परं ।
 तं साक्षादनुभूय नित्यपरमानन्दाम्बुराशिं पुन-
 र्ये जन्मभ्रममुत्सृजन्ति सहसा धन्यास्तु ते दुर्लभाः॥

—आचार्य शुभचन्द्र, ज्ञानार्णव, 926

अर्थ— पृथ्वी पर ऐसे लोग तो असंख्य हैं जो अपनी अद्भुत वाणी से परमेष्ठी की स्तुति करते हैं, परन्तु ऐसे धन्य लोग दुर्लभ हैं जो उस परमानन्द सरोवर का साक्षात् अनुभव करके जन्म-मरण का नाश करते हैं ।

67

अनुग्रहविधौ देव्याः, मातुश्च महदन्तरम् ।
 माता गाढं निबध्नाति, बन्धं देवी निकृतंति ॥

—प्रबोधचन्द्रोदय, 6/11

अर्थ— जन्म देने वाली ‘माता’ और ‘जिनवाणी माता’ में महान् अन्तर है । जन्म देने वाली ‘माता’ तो जीव को मोह में बाँधती है, परन्तु ‘जिनवाणी माता’ जीव को सर्वबन्धनों से मुक्त कर स्वाधीन सुखमय बनाती है ।

68

जन्माटवीषु कुटिलाषु विनष्टमार्गान्,
 येऽत्यन्तनिवृत्तिपथं प्रतिबोधयन्ति ।
 तेभ्योऽधिकः प्रियतमो वसुधातलेऽस्मिन्,
 कोन्योऽस्ति बन्धुरपरः परिभाव्यमानः॥

—आचार्य जटासिंहनन्दि, वरांगचरित्र, 1/20

अर्थ— यह संसार एक कुटिल अटवी (जंगल) के समान है और इसमें संसार के प्राणी मार्ग भूल रहे हैं । ऐसी स्थिति में जो अत्यन्त निवृत्ति का मार्ग समझाते हैं, उनसे अधिक प्रियतम इस विश्व में अन्य कोई जीव का आदरणीय बंधु नहीं है ।

69

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः संचिनोति यः।
स्वशरीरं स पंकेन स्नास्यामीति विलिम्पति ॥

—आचार्य पूज्यपाद, इष्टोपदेश, 16

अर्थ— जो व्यक्ति निर्धन होते हुए धनलिप्सा इसलिए करता है कि उससे वह दान करेगा और कल्याण-साधन करेगा, तो मानो वह स्नान करने के लिए पंक-विलेपन करता है अर्थात् कीचड़ लिपेटता है। यद्यपि स्नान करना अच्छा है, किन्तु स्नान करने के लिए कीचड़ में सनना बुद्धिमत्ता नहीं।

70

देवाधिदेव परमेश्वर वीतराग,
सर्वज्ञ तीर्थकर सिद्ध महानुभाव !
त्रैलोक्यनाथ जिनपुंगव वर्द्धमान,
स्वामिन् ! गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयं ते ॥

—आचार्य पूज्यपाद, ईर्यापथ भक्ति, 9

अर्थ— हे देवाधिदेव! हे परमेश्वर! हे वीतराग! हे सर्वज्ञ! हे तीर्थकर! हे सिद्ध! हे महानुभाव! हे त्रैलोक्यनाथ! हे जिनपुंगव! हे वर्द्धमान स्वामिन्! मैं आपके चरणों की शरण ग्रहण करता हूँ।

71

स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा,
निनाय यो निर्दयभस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिर्नेऽजसा,
बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः॥ 4 ॥

—आचार्य समन्तभद्र, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, 4

अर्थ— जो अपनी भीतर की विकृतियों को समाधितेज से निर्दयतापूर्वक भस्म कर देता है, वही ब्रह्म पद का अधिकारी होता है और वही अपने अमृत-प्रवचनों से दुःखों से पीड़ित जग को मूल तत्त्व से अवगत करा पाता है।

72

काले कलौ चले चित्ते, देहे चान्नादिकीटके ।
एतच्चित्रं यदद्यापि, जिनलिंगधराः नराः॥

—आचार्य सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचंपू, 8/339

अर्थ— यह कलिकाल है, मनुष्यों का चित्त भी चंचल है और शरीर भी अन्न का कीड़ा बना हुआ है, फिर भी यह आश्चर्य है कि आज भी जिनलिंगधारी मनुष्य विद्यमान हैं।

73

दुःप्रज्ञाबललुप्तवस्तुनिचया विज्ञानशून्याशया ।
दृश्यन्ते प्रतिमन्दिरं निजनिजस्वार्थोद्यता देहिनः॥
आनंदामृतसिन्धुशीकरनिचयैर्निर्वाप्य जन्मज्वरं ।
ये मुक्तेर्वदनेन्दुवीक्षणपरास्ते सन्ति द्वित्रा यदि ॥

—आचार्य शुभचन्द्र, ज्ञानार्णव, 927

अर्थ— जिन्होंने दुष्ट बुद्धि के प्रभाव से वस्तु-समूह के यथार्थ स्वरूप को नष्ट कर दिया है अर्थात् जो वस्तुस्वरूप का अन्यथा व्याख्यान करते हैं, जिनका हृदय विवेक-ज्ञान से रहित है, तथा जो अपने-अपने स्वार्थ को सिद्ध करने में सदा प्रयत्नशील रहते हैं— ऐसे प्राणी तो प्रत्येक घर में देखे जाते हैं; परन्तु जो आनन्दरूप अमृत-समुद्र के जलबिन्दु-समूहों के द्वारा संसाररूप ज्वर (ताप) को शान्त करके मुक्तिरूपी लक्ष्मी के मुँह को देखने में उद्यत हो रहे हैं वे नहीं हैं; यदि हैं तो दो-तीन ही हैं।

74

एकोदरा पृथक्ग्रीवा, अन्योन्यफलभक्षिणः।
असहन्ता तं विनश्यन्ति, भारुण्डा इव पक्षिणः॥

—पंचतंत्र+मदन-पराजय

अर्थ— जिनका उदर एक है, परन्तु ग्रीवा (मुख) भिन्न-भिन्न होने से एक-दूसरे के फल का भक्षण करते हैं, वे यदि एक-दूसरे को सहन नहीं करेंगे तो भारुण्ड पक्षी के समान दोनों ही नष्ट हो जाएँगे।

75

जकारो जन्मविच्छेदः, पकारः पापनाशनः।

तस्माज्जप इति प्रोक्तः, जन्मपापविनाशकः॥ —मंत्र-विधान

अर्थ— ‘जप’ शब्द में जो ‘जकार’ है, वह जन्म का नाश करने के अर्थ में है तथा ‘पकार’ पाप का नाश करने के अर्थ में है। इस कारण ‘जप’ शब्द का अर्थ जन्म और पाप का नाश करने वाला होता है।

76

परस्पराविरोधेन, त्रिवर्गो यदि सेव्यते।

अनर्गलमतः सौख्यमपवर्गोऽप्यनुक्रमात् ॥

—आचार्य वादीभसिंह, क्षत्रचूड़ामणि 1/16

अर्थ— धर्म, अर्थ और काम का यदि एक-दूसरे के साथ विरोध न कर सेवन किया जाये, तो उससे सांसारिक सुखों की प्राप्ति होती है और अनुक्रम से मोक्षपद प्राप्त होता है।

77

द्वादशांगुलमात्रेण, सप्तविंशतितंतुभिः।

हरिद्राकुंकुमालिप्तं, कंकणं व्रतबंधनम् ॥ —कंकण-विधान

अर्थ— व्रत-बन्धन के लिए जो कंकण बाँधा जाता है उसका विशेष अर्थ इसप्रकार है—

1. वह द्वादशांगुल प्रमाण होता है अर्थात् मैं द्वादशांग रूप जिनवाणी की श्रद्धा धारण करता हूँ।
2. उसमें 27 तंतु होते हैं अर्थात् मैं 6 द्रव्य + 7 तत्त्व + 9 पदार्थ + 5 अस्तिकाय— इनकी श्रद्धा करता हूँ।
3. वे 27 तन्तु भी 9-9-9 के तीन भागों में बँटे हुए होते हैं अर्थात् मैं तीन रत्नों (रत्नत्रय) की श्रद्धा करता हूँ।
4. वह हल्दी और कुंकुम से लिप्त होता है अर्थात् मैं अरिहंत और सिद्ध की श्रद्धा करता हूँ। हल्दी पीली होने से अरिहंत का और कुंकुम लाल होने से सिद्ध का प्रतीक है।

78

आत्मानं स्नापयेन्नित्यं, ज्ञानवारिणा चारुणा ।
येन निर्मलतां याति, जीवो जन्मान्तरेष्वपि ॥

—महाभारत + नीतिवाक्यामृत

अर्थ— अपनी आत्मा को नित्य उत्तम ज्ञान-जल से स्नान कराते रहना चाहिये, क्योंकि इसके प्रभाव से जीव जन्मान्तरों तक निर्मलता को प्राप्त करता है अर्थात् हमेशा के लिए निर्मल हो जाता है।

79

त्यागो हि परमो धर्मः, त्याग एव परं तपः।
त्यागाद् इह यशोलाभः, परत्राभ्युदयो महान् ॥

—नीतिवाक्य

अर्थ— भारतीय संस्कृति में त्याग का बहुत अधिक महत्त्व है। उसमें प्राचीन काल से आज तक त्याग की ही महिमा के गुण गाये गये हैं। कहा गया है कि त्याग ही परम धर्म है, त्याग ही परम तप है। त्याग से ही इस जन्म में यश की प्राप्ति होती है और अगले जन्म में महान् अभ्युदय प्राप्त होता है।

80

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि,
भव्यात्मनां विभवसम्भवभूरिहेतुः।
दुग्धाब्धिफेनधवलोज्ज्वलकूटकोटी,
नद्धध्वजप्रकरराजिविराजमानम् ॥

—दृष्टाष्टकस्तोत्र, 1

अर्थ— जिनेन्द्र भगवान का भवन अर्थात् मन्दिर भव्य जीवों के भवताप को हरने वाला है, असीम वैभव की उत्पत्ति का हेतु है, दूध और समुद्र-फेन के समान धवलोज्ज्वल शिखरवाला है और ध्वजसमूह की पंक्ति से शोभायमान है। इसप्रकार जब केवल जिनेन्द्र भगवान का भवन देखने से ही भव-भवान्तर के अशुभ दूर होते हैं, तो उनके वीतराग मार्ग पर चलने से तो भव-भवान्तर अवश्य ही मिट जायेंगे।

81

गुरुर्विधाता गुरुरेव दाता, गुरुः स्वबन्धुर्गुरुरत्नसिन्धुः।
गुरुर्विनेता गुरुरेव तातो, गुरुर्विमोक्षो हतकर्मपक्षः॥

—गीत-वीतराग, 9/5

अर्थ— गुरु ही विधाता है, गुरु ही दाता है, गुरु ही अपना सच्चा बन्धु है, गुरु ही गुणों का उत्तम समुद्र है। गुरु ही विशिष्ट नेता है, गुरु ही तात है, गुरु ही साक्षात् मोक्ष है, क्योंकि उसने सर्वकर्म का पक्ष नष्ट कर दिया है।

82

सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमंगलाय,
द्रष्टव्यमस्ति यदि मंगलमेव वस्तु।
अन्येन किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं,
त्रैलोक्यमंगलनिकेतनमीक्षणीयम् ॥

—राजा भोज, भूपालजिनचतुर्विंशतिका, 19

अर्थ— हे जिनेन्द्र ! यदि कोई व्यक्ति अपने सुमंगल के लिए प्रातः उठते ही कोई मंगल वस्तु देखना चाहता है तो उसे सर्वप्रथम आपका ही मुख देखना चाहिए, क्योंकि वही तीन लोक में सर्वाधिक मंगलकारी है, सभी मंगलों का निकेतन है।

83

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः॥
धर्मान्नास्त्यपरं सुहृत् भवभृतां धर्मस्य मूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म मां पालय ॥

—आचार्य पूज्यपाद, दशभक्त्यादिसंग्रह

अर्थ— धर्म सभी हितकारी सुखों का भण्डार है, समझदार लोग धर्म का संग्रह करते हैं, धर्म से ही शिव-सुख की प्राप्ति होती है, धर्म को नमस्कार हो, धर्म के अतिरिक्त कोई अच्छा मित्र नहीं है, धर्म का मूल दया है, मैं प्रतिदिन धर्म में ही अपने मन को लगाता हूँ, हे धर्म! तुम मेरा पालन करो। यहाँ सभी विभक्तियाँ धर्म पर घटित की हैं, जिसका अर्थ है कि धर्म ही सब कुछ है।

84

ज्ञानं पूज्यं तपोहीनं, ज्ञानहीनं तपोर्हितम् ।
यत्र द्वयं स देवः स्याद्, द्विहीनो गणपूरणः॥

—सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचम्पू, 8/358

अर्थ— तप कम हो और ज्ञान अधिक हो तो वह भी पूज्य है और ज्ञान कम हो और तप अधिक हो तो वह भी पूज्य है। यदि ज्ञान और तप दोनों ही हों तो वह तो परमपूज्य है। किन्तु जो ज्ञान और तप दोनों से ही रहित हो तो वह तो केवल बड़े संघ की संख्या पूरित करने वाला है।

85

उपसर्गे दुर्भिक्षे, जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे ।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः॥

—आचार्य समन्तभद्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 122

अर्थ— जिसका कैसे भी प्रतिकार न हो सके— ऐसा उपसर्ग, दुर्भिक्ष, जरा अर्थात् बुढ़ापा एवं रुजा अर्थात् रोग आ जाए तो धर्म की रक्षा के लिए जो शरीर का त्याग किया जाता है, उसे ही गणधरदेव सल्लेखना कहते हैं।

86

बिना व्याकरणेनान्धः, बधिरः कोशवर्जितः।
अलंकारं बिना पंगुः, मूकस्तर्कविवर्जितः॥

—नीतिवाक्य

अर्थ— व्याकरण के ज्ञान बिना मनुष्य अंधा है, शब्दकोश के ज्ञान बिना बहरा है, अलंकार के ज्ञान बिना पंगु है और तर्कशास्त्र के ज्ञान बिना मूक अर्थात् गूंगा है। विद्वानों को अवश्य ही इन सबका ज्ञान करना चाहिए।

87

सर्व एव हि जैनानां, प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न, न चापि व्रतदूषणम् ॥

—आचार्य सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचम्पू 8/22

अर्थ— जैनों को वे सर्व लौकिक विधान स्वीकार हैं, जिनसे सम्यग्दर्शन की हानि न हो और व्रतों में भी दोष न लगे।

88

मंगलं जिननामानि, मंगलं मुनिसेवनम् ।
मंगलं श्रुतमध्येयं, मंगलं बिम्बनिर्मितिः॥

—आचार्य जयसेन, प्रतिष्ठापाठ, 715, पृष्ठ 231

अर्थ— जिन-नामों वालों का मंगल हो, मुनि-सेवा करने वालों का मंगल हो, श्रुत-अध्ययन करने वालों का मंगल हो और बिम्ब अर्थात् प्रतिमा के निर्माताओं का भी मंगल हो।

89

सन्तुष्टाः करुणा मैत्राः, शान्ता दान्तास्तितिक्षवः।
आत्मारामाः समदृशः, प्रायशः श्रमणा जनाः॥

—भागवत महापुराण 12/3/19

अर्थ— श्रमणजन सन्तुष्ट, करुणावान्, सबके मित्र, शान्त, संयमी, तपस्वी, आत्माराम और समदृष्टि होते हैं। इसप्रकार वैदिक ग्रन्थ भी सिद्ध करते हैं कि जैन धर्म और जैन साधु अध्यात्मविद्या को ही विशेष महत्त्व देते हैं।

90

अप्रतिबुद्धे श्रोतरि, वक्तृत्वमनर्थकं भवति पुंसां ।
नेत्रविहीने भर्तरि, विलासलावण्यमिव स्त्रीणां ॥

—पंचसंग्रह, श्लोक 4/2, पृष्ठ 585

अर्थ— जिसप्रकार पति अन्धा हो तो स्त्री का सारा विलास-लावण्य व्यर्थ रह जाता है, उसीप्रकार यदि श्रोता अज्ञानी हो तो वक्ता की विद्वत्ता व्यर्थ रह जाती है। तात्पर्य है कि श्रोताओं को भी विद्वान होना चाहिए।

91

शतेन गुणिताऽऽयाति, सहस्रेण तु तिष्ठति ।
सहस्राणां सहस्रेण, प्रेत्य चेह च तिष्ठति ॥

—नीतिवाक्य

अर्थ— सौ बार पढ़ने से विद्या आती है, हजार बार पढ़ने से टिकती है और लाख बार पढ़ने से परलोक में भी साथ जाती है।

92

ये पठन्ति न सच्छास्त्रं, सद्गुरुप्रकटीकृतम् ।
तेऽन्धाः सचक्षुषोऽपीह, सम्भाव्यन्ते मनीषिभिः॥

—पद्मनन्दि-पंचविंशतिका, 416

अर्थ— जो लोग सद्गुरु-प्रणीत शास्त्रों को नहीं पढ़ते हैं, वे आँखों वाले होते हुए भी अंधे ही माने गए हैं। अर्थात् हमें प्रतिदिन शास्त्र-स्वाध्याय करना चाहिए।

93

ये व्याख्यान्ति न शास्त्रं, ददाति दीक्षादिकं च शिष्याणाम् ।
कर्मोन्मूलनशक्ता, ध्यानरतास्तेऽत्र साधवो ज्ञेयाः॥

—क्रियाकलाप 5, पृष्ठ 143

अर्थ— जो शास्त्र का व्याख्यान भी नहीं करते हैं और शिष्यों को दीक्षादि भी नहीं देते हैं, मात्र कर्मोन्मूलन के लिए सदा ध्यान में ही लीन रहते हैं, उन्हें साधु समझना चाहिए। (साधु को अन्य आडंबरों में तो बिल्कुल नहीं उलझना चाहिए।)

94

विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं न जातु, न दुष्टदेवाः परिलंघयन्ति ।
अर्थान्यथेष्टांश्च सदा लभन्ते, जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन ॥

—आचार्य वीरसेन, धवला 1/1/1/21

अर्थ— जिनेन्द्रदेवों के दर्शन-कीर्तन से सर्व विघ्न नष्ट हो जाते हैं, कोई भय शेष नहीं रहता है, दुष्ट देवादि भी बाधा नहीं पहुँचाते हैं और सदैव यथेष्ट पदार्थों की प्राप्ति भी होती है।

95

चन्दनं शीतलं लोके, चन्दनादपि चन्द्रमा ।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये, शीतला साधुसंगतिः॥

—नीतिवाक्य

अर्थ— लोक में चन्दन सबसे शीतल है और चन्दन से भी चन्द्रमा अधिक शीतल है, किन्तु चन्दन और चन्द्रमा से भी अधिक शीतल तो वास्तव में साधु की संगति है।

96

स्याद्वादो विद्यते यत्र, पक्षपातो न विद्यते ।
अहिंसायाः प्रधानत्वं, जैन धर्मः स उच्यते ॥

—आचार्यश्री की डायरी से

अर्थ— जहाँ स्याद्वाद है, निष्पक्षता है और अहिंसा की प्रधानता है, वही जैनधर्म कहलाता है ।

97

संदिग्धेऽपि परे लोके, कर्तव्यो धर्मसंग्रहः।
यदि नास्ति ततः किं स्यात्, यद्यस्ति नास्तिको हतः॥

—आचार्यश्री की डायरी से

अर्थ— परलोक हो या न हो, पर हमें धर्म-संग्रह करना ही चाहिए, क्योंकि यदि नहीं हैं तो उससे क्या, किन्तु यदि हुये तो नास्तिक तो मारा ही जाएगा ।

98

श्लोकेन वा तदर्धेन, पादेनैकाक्षरेण वा ।
अबन्ध्यं दिवसं कुर्यात्, ज्ञानाध्ययनकर्मभिः॥

—नीतिवाक्य

अर्थ— एक श्लोक पढ़ो, आधा श्लोक पढ़ो, चौथाया श्लोक पढ़ो या फिर एक अक्षर ही पढ़ो, पर अवश्य पढ़ो, एक भी दिन को ज्ञानाराधना से रहित बिताकर बाँझ मत बनाओ ।

99

सिद्धक्षेत्रे महातीर्थे, पुराणपुरुषाश्रिते ।
कल्याणकलिते पुण्ये, ध्यानसिद्धिः प्रजायते ॥

—आचार्य शुभचन्द्र, ज्ञानार्णव, पृष्ठ 263

अर्थ— त्रेसठ शलाका महापुरुषों से प्रभावित, कल्याणक के स्थान, पवित्र सिद्धक्षेत्र आदि महान् तीर्थ-स्थानों पर ध्यान करने से अवश्य ही सिद्धि होती है ।

100

सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः।

येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्यसत्त्वसुखावहम् ॥ —सुप्रभातस्तोत्र

अर्थ— हे वृषभदेव! सुप्रभात तो केवल एक आपके ही जीवन में हुआ है, जो कि आपने समस्त भव्य जीवों को सुख प्रदान करनेवाला तीर्थ प्रवर्तित किया है।

101

सुभाषितेन गीतेन, बालानां च लीलया ।

यस्य न द्रवते चित्तं, स मुक्तोऽथवा पशुः॥ —सुभाषितसंग्रह

अर्थ— जिसका मन सुभाषित और गीत-संगीत सुनकर द्रवित नहीं होता, वह या तो मुक्त होगा अथवा पशु। एक सामान्य मनुष्य तो इनसे अवश्य ही प्रभावित होता है।

102

स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते ।

स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्मात् विमुच्यते ॥

—स्वरूप-संबोधन-टीका

अर्थ— यह आत्मा स्वयं ही कर्म करता है और स्वयं ही उसका फल भोगता है। स्वयं ही संसार में भ्रमण करता है और स्वयं ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

103

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं, यत्परान् प्रतिपादये ।

उन्मत्तचेष्टितं तन्मे, यदहं निर्विकल्पकः॥

—आचार्य पूज्यपाद, समाधिशतक, 19

अर्थ— मुझे दूसरे समझा सकते हैं अथवा मैं दूसरों को समझा सकता हूँ— ऐसा सोचना उन्मत्त चेष्टा है, पागलपन है, क्योंकि वास्तव में मैं तो निर्विकल्प शुद्धात्मा हूँ।

104

यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैः, यः स्तूयते सर्वनरामरेन्दैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

—आचार्य अमितगति, भावनाद्वात्रिंशतिका, 12

अर्थ— समस्त मुनि-समूह जिसका स्मरण करते हैं, समस्त मनुष्य एवं देवों के इन्द्र भी जिसकी स्तुति करते हैं, सभी वेद-पुराणादि शास्त्र जिसका गुणगान करते हैं, वह देवों का देव तीर्थकर वृषभदेव मेरे हृदय में निवास करे।

105

अग्रे व्याधः करधृतशरः पार्श्वतो जालमाला।
पृष्ठे वह्निर्दहति नितरां वामतो सारमेयाः॥
एणी गर्भादलसगमना बालकैरुद्धपादाः।
एणी हिरणं वदति स्वामि किं करोमि क्व यामि?

—नीति-कथामृत

अर्थ— जंगल में आग लगी है और एक हिरण का परिवार उसमें से बचकर जा रहा है। हिरण हिरणी से कहता है— जल्दी-जल्दी चलो। हिरणी बोलती है— हे स्वामी! आगे शिकारी हाथ में धनुष-बाण लेकर आ रहा है, दाईं ओर किसी ने जाल फैला रखा है, पीछे भयंकर आग जल रही है, बाईं ओर शिकारी कुत्ते हैं, मैं गर्भवती भी हूँ और मेरे बच्चे भी मेरे पैरों में घुसे जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में आप ही बताओ— मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? तात्पर्य है कि संसार में चारों ओर दुःख ही दुःख भरा है।

106

दानं पूजा च शीलं च, दिने पर्वण्युपोषितम्।
धर्मश्चतुर्विधः सोऽयं, आम्नातो गृहमेधिनाम् ॥

—आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, 41/104

अर्थ— गृहस्थ जीवन के प्रमुख धर्मों में दान देना, पूजा करना, शील का पालन करना और पर्व के दिनों में उपवास करना आदि प्रमुख हैं।

107

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम् ।

यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम् ॥

—आचार्य पूज्यपाद, इष्टोपदेश, 19

अर्थ— जो जीव के लिए उपकारी है वह देह के लिए अपकारी है और जो देह के लिए उपकारी है वह जीव के लिए अपकारी है । तात्पर्य यह है कि शरीर से अनुराग छोड़ कर आत्मा से अनुराग करो ।

108

यथास्वं दानमानाद्यैः, सुखीकृत्य विधर्मणः।

सधर्मणः स्वसात्कृत्य, सिद्ध्यर्थी यजतां जिनम् ॥

—आचार्य सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचंपू, 8/32

अर्थ— अपने साधर्मी की तरह विधर्मी को भी दान-मान देकर सुखी करना चाहिए, जिससे जैनधर्म की प्रभावना का कार्य सिद्ध हो । तात्पर्य यह है कि हमें जिनधर्म की बड़ी प्रभावना करने के लिए अन्य धर्मवालों से भी मधुर सम्बन्ध रखना चाहिए ।



परिशिष्ट**अनुक्रमणिका**

अग्रे व्याधः करधृतशरः	105	कोषस्येव महीपानां	55
अण्णोण्णं पविसंता	23	क्षेमं सर्वप्रजानां	60
अनुग्रहविधौ देव्याः	67	खम्मामि सव्व जीवाणं	17
अपाकुर्वन्ति यद्वाचः	54	गुरुर्विधाता गुरुरेव	81
अप्रतिबुद्धे श्रोतरि	90	चन्दनं शीतलं लोके	95
अरुहा सिद्धाश्रिया	49	चिंता चिता-समा	61
अलियं कमले	3	चिंता बद्धउ सयलु जग	20
अल्पाक्षरमसंदिग्धं,	53	जं सक्कदि तं	18
अहमेवको खलु	48	जइ जिणमयं	33
अहिंसैव जगन्माता	52	जकारो जन्मविच्छेदः	75
आगमहीणो समणो	1	जदि इच्छह	31
आत्मानं स्नापयेन्नित्यं	78	जधं चरे	39
आदहिदं कादव्वं	27	जध इंधणेहि	37
आलस्यो मंदबुद्धिश्च	56	जन्माटवीषु कुटिलासु	68
इतो न किंचित्	62	जम्मणअभिणिक्खवणे	5
ईसाभावेण पुणो	32	जह ण वि सक्कमणज्जो	46
उच्चावचजनप्रायः	63	जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणं	35
उपसर्गे दुर्भिक्षे	85	जह णाम कोवि पुरिसो रायाणं	41
एकेनाकर्षन्ती	59	जह ते ण पियं	34
एकोदरा पृथक्ग्रीवा	74	जिणपूया मुणिदाणं	7
एदम्हि रदो णिच्चं	26	जीवमजीवं दव्वं	21
एयत्त-णिच्छयगदो	2	जीववहो अप्पवहो	38
एवं हि जीवराया	41	जे णयदिट्ठविहीणा	30
कधं चरे कधं चिट्ठे	39	जेण रागा विरज्जेज्ज	47
कवीनां तीर्थकृद्देवः	64	जेण विणा लोगस्स	29
कालः कलिर्वा	57	जो जाणदि अरिहंतं	22
काले कलौ चले	72		

ज्ञानं पूज्यं तपोहीनं	84	यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैः	104
णगरस्स जह दुवारं	45	यज्जीवस्योपकाराय	107
णत्थि अणूदो	15	यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं	103
णत्थि णएहिं	6	यथास्वं दानमानाद्यैः	108
णयरम्मि वण्णिदे	44	ये पठन्ति न	92
णाणा जीवा णाणा	8	ये व्याख्यान्ति न	93
णाणी सिव परमेद्धी	9	रत्तो बंधदि कम्मं	42
णियभावणाणिमित्तं	4	लद्धूण णिहिं	16
त्यागाय श्रेयसे	69	वरिस सहस्सेण	11
त्यागो हि परमो	79	विघ्नाः प्रणश्यन्ति	94
दानं पूजा च शीलं	106	विज्जारहमारुढो	50
दुःप्रज्ञाबललुप्तवस्तुनिचया	73	विद्वानेव विजानाति	51
दृश्यन्ते भुवि	66	शतेन गुणिताऽऽयाति	91
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं	80	श्लोकेन वा तदद्धेन	98
देवाधिदेव परमेश्वर	70	संकल्प्यं कल्पवृक्षस्य	65
द्वादशांगुलमात्रेण सप्तविंशति	77	संतुष्टाः करुणा	89
धम्मसभा णिप पंच	10	संदिग्धेऽपि परे	97
धम्मो मंगलमुक्किद्धं	12	सम्मादिद्धी जीवा णिसंका	25
धम्मो वत्थु सहावो	28	सर्व एव हि जैनानां	87
धर्मः सर्वसुखाकरो	83	सर्वातवदतद्गुणमुख्यकल्पं	58
पढमच्चउक्के पढमं	13	सव्वे भावे	35
परमाणुमित्तयं पि हु	24	सिद्धक्षेत्रे महातीर्थ	99
परस्पराविरोधेन त्रिवर्गो	76	सुद-परिचिदाणुभूदा	14
पोग्गलकम्मादीणं कत्ता	40	सुप्तोत्थितेन सुमुखेन	82
बावत्तरी-कला	43	सुप्रभातं तवैकस्य	100
बाहिरगंथ विहीणा	19	सुभाषितेन गीतेन	101
बिना व्याकरणेनान्धः	86	स्याद्वादो विद्यते	96
भत्तपइण्णाइविही	36	स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा	71
मंगलं जिननामानि	88	स्वयं कर्म करोत्यात्मा	102

